अध्याय–द्वितीय

हिन्दी कथा साहित्य में ग्रामीण चेतना

अध्याय–2

हिन्दी कथा साहित्य में ग्रामीण चेतना

हर युग में नारी की स्थिति परिवर्तित हुई है। कभी समाज ने उसकी प्रशंसा की है तो कभी उसे दासी समझकर उसकी अवहेलना की है। मनुस्मृति में लिखा है – ''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवतः। यत्रे तास्तु न पूज्यंते सर्वास्तत्राफलः क्रिया।'' अर्थात जहां स्त्री की पूजा की जाती है, वहाँ देवता वास करते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार स्त्री मुक्ति व स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंद आचरण या देह प्रदर्शन नहीं बल्कि समाज में पुरुषों के समकक्ष स्त्रियों को प्राप्त अधिकारों का सही उपयोग है। भारत में नारी जागरण या नारी स्वतंत्रता संबंधी जैसे आंदोलन शुरू हुए, वैसे नारी में ''स्व'' की भावना जागृत होने लगी है। अब वह अपनी अस्मिता को पहचानने लगी है। मैत्रेयी पुष्पा नारी को शोषण से मुक्त कराने और उसकी स्वतंत्र अस्मिता को स्थापित करने का प्रयास करती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में ऐसी स्त्री की छवि को अंकित किया है जो स्वयं संघर्ष करती है। अपनी लड़ाई खुद लड़ती है और अधिकारों को स्वयं प्राप्त करती है। मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में स्त्री चेतना के विविध आयाम दिखाई देते है। स्त्री जीवन से जुड़ी समस्याएँ, संघर्ष, स्वतंत्रता, अधिकार चेतना, स्वालंबन, अस्तित्व और अस्मिता आदि स्त्री चेतना के कई तथ्य सामने आते है। मैत्रेयी पुष्पा की रचनाएँ अपनी अनुभूति पर आधारित है। इसलिए उनकी रचनाओं में जीवन की वास्तविकता का चित्रण हुआ है। घटनाओं की सत्यता और पात्रों की सजीवता यह उनके साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में समाज की नारी समस्या, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

2.1 चेतना का अर्थ एवं स्वरूप

नालंदा विश्व कोश के अनुसार – ''चेतना शब्द की उत्पति 'चित् युच अन टाप' के सहयोग से हुई है।''[74] अर्थात जिसका अर्थ ज्ञानात्मक मनोवृति से समझा जाता है। चेतना को समझने के लिए हमें चेतना के क्रिया व्यापारों को समझना

---

74 नवल जी, 'नालंदा विश्व कोश', ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, 1917, पृष्ठ – 138

आवश्यक है। हम दैनिक जीवन में जो प्रवृतियाँ करते हैं, उसके मूल में हमारी चेतना रहती है। 'चेतना' मानव में एक ऐसी क्रियाशक्ति है, जिसके बिना मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता। चेतना का आशय यह है कि किसी भी विषय में सावधानी, होशयारी और सजगतापूर्वक कार्य करना आवश्यक है। चेतना मानव प्राणी में ही संभव है।

चेतना की परिभाषा रामदरश मिस्त्र के अनुसार – "चेतना वह तत्व है जिसमें ज्ञान का भाव और व्यक्ति क्रियाशीलता की अनुभूति है। जब हम किसी पदार्थ को जानते हैं, तो उसके स्वरूप का ज्ञान होता है।"[75] अर्थात् चेतना जीवधारियों में रहने वाला वह तत्व है जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। दूसरे शब्दों में हम उसे मनुष्य की जीवन क्रियाओं को चलाने वाला तत्व कह सकते है। धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार–"चेतना का अर्थ हम मानव मन की समझाने–बुझाने की शक्ति से, बौद्धिक प्रवणता, प्रवीणता, प्रेरणा अथवा भावना के रूप में प्रयुक्त करते हैं। चेतना का सीधा संबंध मानव की बुद्धि से होता है और मानव प्राणी में ही संभव है।" चेतना मानव में ही जागृत होती है अर्थात चेतना स्वयं को अपने आसपास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है।[76]

चेतना मन की एक स्थिति ही है–जिसके अन्तर्गत बाह्य जगत के प्रति संवेदनशीलता तीव्र अनुभूति का आवेग, चयन या निर्माण की शक्ति इन सबके प्रति चिन्तन विद्यमान रहता है ये सब बातें मिलकर किसी भी व्यक्ति की पूर्ण चैतन्य अवस्था का निर्माण करती है।

चेतना समझने की वस्तु है उसे परिभाषित करना सरल नहीं है। व्यक्ति चेतना कारण ही क्रियाशील रहता है। चेतना रूप अत्यन्त सूक्ष्म और जटिल है। इसकी व्याख्या नियंत्रित शब्दों में नहीं की जा सकती है। फिर भी विचारकों ने अपने–अपने दृ दृष्टिकोण से चेतना की व्याख्या करने का प्रयास किया है। 'चेतना' शब्द 'चित' से सम्बन्धित है।

संस्कृत आचार्यों ने चेतना को बुद्धि–ज्ञान, जीवन–शक्ति, भावना या विचार के अर्थ में ग्रहण किया है। घीः, मति, चित, सवित्त, प्रतिपत, ज्ञाप्ति, सत्व एवं जीवंत के

---

75 रामदरश मिस्त्र, 'साहित्य संदर्भ और मूल्य', ज्ञानपूर्णा प्रकाशन, जयपुर, 1960, पृष्ठ – 95
76 धीरेन्द्र वर्मा, 'आधुनिक हिन्दी शब्द कोश', ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, 1917, पृष्ठ– 124

अर्थ में भी चेतना शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'चैतन्य लक्षणा जीवः' अर्थात जीवन का लक्षण ही चेतना है।

चेतना और मनुष्य का मौलिक संबंध है। चेतना वह विशेष गुण है जो मनुष्य को सजीव बनाती है और चरित्र उसका वह संपूर्ण संगठन है। किसी मनुष्य की चेतना और चरित्र केवल उसी की व्यक्तिगत संपति नहीं होते। ये बहुत दिनों के सामाजिक प्रक्रम के परिणाम होते हैं। प्रत्येक मनुष्य स्वयं के वंशानुक्रम प्रस्तुत करता है। वह विशेष प्रकार के संस्कार पैतृक सम्पत्ति के रूप में पाता है। वह इतिहास को भी स्वयं में निरूपित करता है क्योंकि उसने विभिन्न प्रकार की शिक्षा तथा प्रशिक्षण को जीवन में पाया है।

इसके अतिरिक्त वह दूसरे लोगों को भी अपने द्वारा निरूपित करता है, क्योंकि उसका प्रभाव उसके जीवन पर उनके उदाहरण, उपदेश तथा अवपीड़न के द्वारा पड़ा है। एक बार मनुष्य की चेतना विकसित हो जाती है, तब उसकी प्राकृ तिक स्वतन्त्रत चली जाती है। वह ऐसी अवस्था में विभिन्न प्रेरणाओं और भीतरी प्रवृतियो से प्रेरित होता, परन्तु वह उन्हें स्वतन्त्रत से प्रकाशित नहीं कर सकता। इस प्रकार मनुष्य की चेतना अथवा विवेकी मन उसके अवचेतन अथवा प्राकृतिक मन पर अपना नियंत्रण रखता है। मनुष्य और पशु में यही विशेष भेद है। मनुष्य की चेतना जागृत होती है परन्तु पशु की नहीं।

चेतना का हमारी जीवन–शैली में बहुत महत्व है। मनोविज्ञान की दृष्टि में चेतना मानव में उपस्थित वह तत्त्व है जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। चेतना के कारण ही हम देखते, सुनते, समझते और अनेक विषयों पर चिंतन करते हैं। इसी के कारण हमें सुख–दुःख की अनुभूति होती है। मानव चेतना की तीन विशेषताएँ हैं। वह ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक हार्ती है। चेतना ही सभी पदार्थों की जड़–चतेन, शरीर–मन, निर्जीव–सजीव, मस्तिष्क–स्नायु आदि को बनाती है। उनका रूप निरूपित करती है।

चेतना के विषय में हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क में हाने वाली क्रियाओं अर्थात् कुछ नाड़ियों के स्पंदन का परिणाम ही चेतना है। यह अपने में स्वतन्त्र कोई अन्य तत्व नहीं है। शरीर चेतना के कार्य करने का यंत्र मात्र है, जिसे वह कभी उपयोग में लाती है और कभी नहीं लाती है। परन्तु यदि यंत्र

बिगड़ जाए या टूट जाए तो चेतना अपने कामों के लिए अपंग हो जाती है। चेतना के बिना सुना व देखा नहीं जा सकता है।

यह हमें अनुभव और भावनाओं की पहचान करने की अनुमति देता है। यही चेतना सही है जोकि भौतिक नहीं है लेकिन कुछ आध्यात्मिक है। इस प्रकार चेतना मानसिक अनुभूति है। मानसिक गतिविधि और सोच के साथ भावना भ्रमित मत करो, दानों वास्तव में भावना की प्रतिक्रिया नहीं है। सकारात्मक और नकारात्मक भावनाओं का स्तर है।

सकारात्मक क्रियाएँ जैसे–प्यार, क्षमा, दया–भाव व नकारात्मक क्रियाएँ जैसे–अज्ञान, स्वार्थ, घृणा आदि है। ये सब चेतना के तत्व नहीं हैं। इस प्रकार चेतना मानसिक होकर भी सामाजिक आरै सांस्कृतिक बनती जाती है।

2.2 ग्रामीण चेतना से तात्पर्य

साठोत्तर काल के नए रचनाकारों की रचना दृष्टि पूर्णतः नवीन है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में परिवारगत संदर्भों में स्त्री–पुरूष के बदलते संबंधों को चित्रित एवं विश्लेषित किया है। वे अपनी रचनाओं में दुर्बल नारी के अतिरिक्त आर्थिक एवं मानसिक गुलामी से मुक्ति पाने की छटपटाहट को महसूस किया है और अपने स्वावलंबन का परिचय देने वाली नारी का चित्रण भी करती है। उनकी कुछ रचनाओं में नारी स्वतंत्र है कि विवाहित होते हुए भी पर–पुरूष के साथ संबंध स्थापित करने में कोई हिचक नहीं दिखाती। जबकि अधिकांश रचनाओं में उसे भावनाओं और इच्छाओं को प्रकट करने की भी स्वतंत्रता नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अपने इर्द–गिर्द का परिसर जो नारी को संदेह की दृष्टि से देखता है, उनके प्रति वह रोष व्यक्ति करती है।

"मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार स्त्री मुक्ति व स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंद आचरण या देह प्रदर्शन नहीं बल्कि समाज में पुरूषों के सामने स्त्रियों को प्राप्त अधिकारों का सही उपयोग है। भारत में नारी जागरण या नारी स्वतंत्रता संबंधी जैसे आंदोलन शुरू हुए, वैसे नारी में 'स्व' की भावना जागृत होने लगी है। अब वह अपनी अस्मिता को पहचानने लगी है। वह नारी को शोषण से मुक्त कराने और उसकी स्वतंत्र अस्मिता को स्थापित करने का प्रयास करती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में ऐसी

नारी की छवि को अंकित किया है जो स्वयं संघर्ष करती है। अपनी लड़ाई खुद लड़ती है और अधिकारों को स्वयं प्राप्त करती है।''[77]

स्त्री को अपने यथास्थिति से उभरना जरूरी है, तभी उसका अस्तित्व और अस्मिता बच पायेगी। वह अपनी स्थिति से तब बाहर आयेगी जब उसमें आत्मविश्वास, साहस, अटूट धैर्य तथा भीतरी आत्मनिष्ठा हो। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम' की नायिका मंदाकिनी तथा 'चाक' की नायिका सारंग इसका प्रतिनिधित्व करने वाली स्त्रियाँ है। मंदाकिनी तथा सारंग यह दो नारियों की कहानियाँ नहीं हैं, यह हमारे पूरे समाज की दो प्रमुख धाराओं के प्रतीक हैं। एक ओर राजनेताओं के अपने पिछवाड़े में प्रतिगामिता, भ्रष्टाचार, हैवानगी और सामंती ऐठ की धारा बह रही है, जिसमें हाथ धोने से कई लाभ हैं किन्तु वहीं दूसरी ओर गाँवों के क्षुद्रतम तबकों से एक अन्य लहर भी उतनी ही ताकत के साथ उठने लगी है, उपन्यास का प्रतिरोध करने, उसे चुनौती देने और अन्यायी के आगे हथियार न डालने की।

'इदन्नम' उपन्यास की नायिका मंदाकिनी केवल निजी स्तर पर ही संघर्ष नहीं करती बल्कि मजदूरों के हक के लिए बड़े आत्मविश्वास के साथ गाँव के कुछ लोग तथा टीकम सिंह के सहयोग से ठेकेदारों के विरूद्ध एक लंबी लड़ाई का अभियान छेड़ती है। पुरूषों ने अन्याय का प्रतिकार करने के लिए स्त्रियों की शक्ति व बुद्धि पर भरोसा किया। इसलिए बड़े विश्वास के साथ श्यामली गाँव के बुजुर्ग मंदा के हाथ में नेतृत्व की मशाल देकर उसके पीछे–पीछे चलने का विश्वास देते है। आज पुरूष मानसिकता में स्त्रियों के प्रति उदार दृष्टिकोण तथा सहयोग की भावना विकसित होते हुए हम देख सकते है। द्वारिका कक्का के इस कथन से यह स्पष्ट होता है – ''तें तो आगे–आगे चल बेटा। फिर अनुगामी तो चले आयेंगें स्वतः ही। तेरी गैल ही तो चलना है हमें, कंधे से कंधा मिलाकर, पग के चिन पर पग धरकर।''[78]

आज की नारी अत्यंत संघर्षशील है। वह सामाजिक और मानसिक तनावों से मुक्ति पाने के लिए निरंतर प्रयास कर रही है। इन प्रयासों में उन्हें कुछ सफलता

---

77 रामविलास शर्मा– आस्था और सौन्दर्य, किताब महल, इलाहाबाद, 1984

78 पुष्पा, मैत्रेयी. इदन्नमम. नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, दूसरी आवृत्ति, 2009, पृ. 329

अवश्य मिली है। फिर भी नारी इन तनावों से पूरी तरह मुक्त नहीं हुई है। आरंम्भिक युग में नारी को पढ़ने–लिखने की स्वतंत्रता नहीं थी। अशिक्षित होने की वजह से उसे पुरूषों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। आज वह पढ़–लिखकर स्वतंत्र और आत्मनिर्भर हुई है। नारी चेतना स्त्री को मनुष्य के रूप में स्थापित कर उसे उसके अस्तित्व की पहचान करती है। भारत में स्त्री–विमर्श का आरम्भ 19वीं सदी में महात्माफूले और राजाराम मोहनराय से माना जाता है। क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम स्त्री को सर्वांगीण उत्थान हेतु अपने कृतिशील कार्य से स्त्री शिक्षा का आरम्भ स्वयं अपने घर में किया है। इसे स्त्री–विमर्श के प्रथम चरण की शुरूआत के रूप में देखा जा सकता है। महात्माफूले ने स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में स्त्री और पुरूष दोनों समानाधिकार के धनी है। मैत्रेयी पुष्पा लिखती है–''स्त्री–पुरूष जन्मतः स्वतंत्र हैं, अतः दोनों को भी नैसर्गिकतः समान अधिकार उपभोगने की सुविधा होनी चाहिए।''[79]

स्वतंत्र और मुक्तिकांक्षी नारी : नारी और पुरूष एक–दूसरे के पूरक है, परन्तु इस पुरूष प्रधान संस्कृति में पुरूष ने हमेशा ही स्त्री को दासी समझा है। ''सीमोन दबोउ आर लिखती है–''पुरूष जान–बूझकर स्त्री को बौना रखता है। स्त्री न देवी है न राक्षसी, वह मानवी है जिसे समाज फूहड़ प्रथाओं ने दासता में जकड़ कर रख दिया।''[80] पुरूष ने जब नारी पर शोषण और अत्याचार करना प्रारंभ किया, उसे व्यक्ति से वस्तु समझा, तभी नारी ने उसके अत्याचारों और शोषण का सक्रिय विरोध करने के लिए आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने का प्रयास किया। इसी स्वावलंबन ने उसका सर्वांगीण विकास कर, उसे पराधीन तथा अत्याचारों के विरूद्ध आवाज उठाने की ताकत दी। मैत्रेयी पुष्पा की बहुत सी रचनाओं को नारी परिवार द्वारा शोषित और पीड़ित होने के बावजूद वह अंत तक संघर्ष करते दिखाई देती है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी रचनाओं में नारी चेतना के अंतर्गत नारियों को अपने उत्तरदायित्व के प्रति प्रेरित किया है। किशोरियों से लेकर अधेड़ उम्र की महिलाओं तक अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग हो उठी है। विवाह के प्रति वर्तमान नारी का दृष्टिकोण बदलने लगा है। अब वह विवाह को बंधन के रूप में स्वीकार न कर,

---

79 पुष्पा, मैत्रेयी. इदन्नमम. नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, दूसरी आवृत्ति, 2009, पृ. 166

80 दि सेकिंड सेक्स – सीमोन दबोउ आर–अनुवाद डॉ0 प्रभा खेतान–'स्त्री उपेक्षिता'–पृष्ठ 52

उसकी महता को समझने का प्रयास कर रही है। अब स्त्रियां स्वयं प्रेम–विवाह को अनिवार्य न मानकर गौण मानने लगी है। वे शिक्षा तथा युगबोध से प्रभावित होकर विवाह को जीवन का केन्द्र मानने से अस्वीकार कर रही है। वह विवाह के लिए आत्म निर्णायक बनने लगी है।

मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं की नारी भले ही गाँव की हैं, किंतु वह अपना जीवन स्वतंत्र रूप से जीना चाहती है। आधुनिक नारी आज नई संकल्पशक्ति के साथ जीने लगी है। समाज में अपने स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा के लिए नारी को कदम–कदम पर विद्रोह और संघर्ष करना पड़ रहा है। आज की नारी शिक्षित होने के कारण अपने व्यक्तित्व को जानने लगी है। पुरूष की भाँति वह भी समाज में स्वायतता स्थापित करना चाहती है। अपने अधिकारों के प्रति वह सचेत हो चुकी है। निर्मल वर्मा के अनुसार–''नारी अपने अधिकारों की इच्छा करे, अधिकारी भी बने, अधिकारी के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए। अर्थात् इच्छा पूर्ण करने के लिए कृति की आवश्यकता होना जरूरी है।''[81]

मैत्रेयी पुष्पा साठोतर हिन्दी कथा साहित्य में उदीयमान होते हुए साहित्य के क्षितिज पर ध्रुव तारों की तरह जगमगाई। मैत्रेयी पुष्पा का लेखन स्त्री केन्द्रित है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री स्वयं के लिए स्वतंत्रता के लिए आयाम निर्धारित करती है। वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए दृढ़ता से समाज का सामना करने हेतु सदैव तत्पर रहती है। यही उनकी लेखनी का मूलमंत्र है। मैत्रेयी पुष्पा ने बुराई नहीं की। मैत्रेयी पुष्पा का कहना है – ''जेवर, गहना, बासन और बेटी मुसीबत के समय काम आते है। अब तू मेरी खरीदी हुई।''[82]

सदियों से स्त्री पुरूषों के द्वारा उतनी शोषित नहीं हुई जितनी प्रताड़ना एक स्त्री ने दूसरी स्त्री को दी है। सही मायनों में एक पुरूष किसी स्त्री की शह पाकर ही दूसरी स्त्री को प्रताड़ित करने की हिम्मत कर पाता है। एक औरत अपने पति के द्वारा मारपीट सहते हुए भी उसके गुण में, कमी नहीं रखती। इसका उदाहरण मैत्रेयी ने अपने उपन्यास ''कही ईसुरी फाग'' में दिया है। बाई अपने स्वर्गीय पति के गुण गाती है–''ओ विरताप के दादा, तुम ने जनम–जनम सुरग मिले। अपुन 6

---

81 निर्मल वर्मा, 'महादेवी एक मूल्यांकन', लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 1969, पृष्ठ– 45

82 मैत्रेयी पुष्पा, कही ईसुरी फाग, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 नई दिल्ली, 2004 पृ. 353

महीना अन बोला तो बांधे रहे, अकेले ही हमारी जिंदगानी बखसे रहे। बस–ईतके–सा तसिया की सोच–सोच के जिंदा रहे अपना ही आदमी तो है, जिसका बोझ हम हथेरी पर सहे या करीहाई पर। जनी बच्चा का बोझ भी तो गर्भ में सहती है। जिंदगानी बोझ–वजन के ही हवाले रहनी है, तो आदत डारो।''[83]

झूलानट उपन्यास की नायिका शीलो कथा के प्रारम्भ में अबला नारी के रूप में सामने आती है। किन्तु धीरे–धीरे उसके व्यक्तित्व में असाधारण परिवर्तन होता है। सर्वप्रथम अपने पति को मनाने के लिए किए गए उपाय असफल होने पर वह निर्णय करती है कि उसे पाने का प्रयास नहीं करेगी–''क्रोध–क्रोध की ऐसी भंगिमा पहली बार अख्यितार की है उन्होंने। बांह का गंडा तोड़कर फेंक दिया। सरजू की दी हुई शीशियां अम्मा द्वारा मंगाई श्रृंगार सामग्री घर के पनारे पुरोड़ डाली।''[84]

''मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य के अधिकांश पात्र सामान्य तथा बुद्धिजीवी होने के कारण उनकी रचनाओं में साहित्यिक परिवेश की छटा भी दिखाई देती है। साहित्य मैत्रेयी की स्मृति में रचा बसा है। बचपन से लेकर अब तक की साहित्य से जुड़ी हुई घटनाओं को उन्होंने अपनी रचनाओं में किसी न किसी पात्र के माध्यम से अंकित किया है।''[85] उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि मैत्रेयी के कथा साहित्य में सफलतापूर्वक परिवेश का चित्रण हुआ है। रचनाओं में परिवेश के सजीव चित्रण से कथा और पात्र अधिक स्वाभाविक हो उठे हैं।

हिन्दी कथा साहित्य में आंचलिक कथा साहित्य का विशेष महत्व है। लगभग छठे दशक से विकसित आंचलिक उपन्यासों की एक सशक्त परम्परा हिन्दी साहित्य में विद्यमान है। आंचलिक शब्द अंचल से बना है जिसका अर्थ है कोई स्थान विशेष अर्थात् भौगोलिक सीमाओं द्वारा घिरा हुआ कोई जनपद या क्षेत्र। अंचल एक गाँव, शहर, मोहल्ला अथवा किसी वन की उपत्तिका कुछ भी हो सकता है। विशिष्ट अर्थ में आंचलिक उपन्यास वह है जिसमें किसी स्थान–विशेष का सम्पूर्ण जन–जीवन अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ प्रतिबिम्बित हो उठता है। हिन्दी के आंचलिक

---

83 मैत्रेयी पुष्पा, कही ईसुरी फाग, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 नई दिल्ली, 2004 पृ. 354

84 मैत्रेयी पुष्पा, झूलानट, , राजकमल प्रकाशन, 1999 ई0 नयी दिल्ली पृ. 24

85 मानव विकास रिपोर्टः मौर्य राशि एवं नुपूर कुकरेती द्वारा संकलित एवं ''संपादित सुरक्षा के दायरे'' भाग–1 प्रकाशक (सहयोगिनी ट्रस्ट छतरपुर 1900 आलेखित)।

उपन्यासकारों फणीश्वरनाथ 'रेणु', नागार्जुन, रांगेय राघव, षिवप्रसाद सिंह आदि प्रमुख हैं। यह कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा साहित्य में आंचलिक उपन्यासकारों की गौरवपूर्ण विरासत को जीवंत विस्तार दिया है।

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य की भावभूमि, रंग–चेतना, विषयवस्तु अद्‌भुत एवं वैविध्यपूर्ण हैं। इनके उपन्यासों में एक ओर बुन्देलखण्ड के लोक जीवन की सादगी, सहजता, लोकसंस्कृति, लोकजीवन का राग–विराग, हर्ष–विषाद, संवेदना, प्राकृतिक जीवन आदि समग्रता के साथ चित्रित है। वहीं दूसरी ओर समसामयिक राजनीतिक उतार–चढ़ाव, आर्थिक संकट, जातिगत संघर्ष एवं सामाजिक सरोकार जीवंत रूप में उद्‌घाटित हुए हैं। मैत्रेयी के उपन्यासों के अध्ययन अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि आंचलिकता मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की प्रमुख विशेषता है। बुन्देलखण्ड जैसे पिछड़े और ग्रामीण क्षेत्र को अपने उपन्यासों की कथावस्तु बनाने वाली मैत्रेयी पुष्पा बुन्देलखण्ड की पहचान बन चुकी हैं। मैत्रेयी ने अपने ग्रामीण अंचल एवं उससे जुड़े पात्रों का सजीव चित्रण उपन्यासों में किया है। जिससे अंचल विशेष की सकारात्मक एवं नकारात्मक स्थितियाँ उजागर हुई हैं। 'इदन्नमम', 'चाक', 'बेतवा बहती रही', 'अल्मा कबूतरी', 'अगनपाखी', 'झूलानट', 'कही ईसुरी फाग', 'त्रियाहठ' आदि उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है।

''आंचलिक तत्व की दृष्टि से 'इदन्नमम' उपन्यास का मूल्यांकन किया जाए तो स्पष्ट होता है कि उसमें बुन्देलखण्ड की दयनीय स्थिति जैसे–प्राकृतिक आपदाओं से जूझते किसान, उनकी अभावग्रस्तता, परम्परागत पूँजी के रूप में उनकी जमीनों पर क्रेषर मशीन के ठेकेदारों का कब्जा, खेतों की कम होती उर्वरता आदि का यथा तथ्य वर्णन मिलता है। यह स्थिति 'इदन्नमम' उपन्यास में चित्रित मात्र सोनपुरा गाँव की ही नहीं बल्कि पूरे बुन्देलखण्ड अँचल की है। 'सोनपुरा के बहाने मैत्रेयी ने पूरे बुन्देलखण्ड की करुण कथा इस उपन्यास में सुनाई है। आज पूरा बुन्देलखण्ड गिट्टी के क्रेशरों की घड़घड़ाहट से काँप रहा है, उसकी धूल से लोगों की जीवन–शक्ति और खेतों की उर्वराशक्ति नष्ट हो रही है। ऐसे क्षेत्रों में कानून का नहीं, गुंडागर्दी का बोलबाला है। बोली और जिसकी लटक तो मैत्रेयी

पुष्पा की खास धरोहर हैं, जिसे वे बड़ी कुशलता से अपने पात्रों के मुँह से झरने की तरह अनवरत बहाती रहती हैं।'[86]

मैत्रेयी पुष्पा ने ग्रामीण अंचल एवं उसके प्राकृतिक वैभव सम्पदा का सूक्ष्म दृ ष्टि से चित्रण करते हुए वनजातियों के जीवन–संघर्ष को भी चित्रित किया है, जो उनकी मानवीय संवेदना एवं लोकजीवन के दुःख–दर्द की अनुभूति का द्योतक है। ''पहाड़, वन, नदियाँ, महुआ, बेर, करौंदी, चिरौंजी, हल्दी, अदरक, अरे तमाम संपदा है, पर दुर्भाग्य है हमारा, कि हम नहीं बरत पाते दलालों के सुपुर्द हो जाती हैं, हमारी सम्पत्ति। पहाड़ों की निलामी, वनों की बोली, तहस–नहस कर देती है माहौल को। पहाड़ टूट रहे हैं, वन कट रहे हैं। सूनसान, सपाट मैदानों मुंड़फड़ाते डोल रहे हैं पंक्षी–परेवा।'[87]

मैत्रेयी के 'अगनपाखी' उपन्यास में भी बुन्देलखण्ड के जन जीवन की अज्ञानता, धर्मभीरूता, एवं कृषक शोषण आदि का चित्रांकन हुआ है। ''नाना को आगे कुछ न सूझा। अमान सिंह और सोच भी क्या सकते थे सिवा इसके कि जो हुइहैं असल बुंदेला लै लैहें मुखिया कौ मूँड। किसी हथियार की जरूरत न पड़ी, हाथ–हथौड़ा हो गये। लोहे का शिकंजा बन गये। गले कुंदा.....। मौत के जितने साधन हो सकते थे, नाना के शरीर से ही बने। नानी बताती है– मुखिया ने दुनिया से विदा ली। सच ने अपना भाँड़ा खुद फोड़ा, नाना खुद ही कबूल गये हों, हाँ मैंने मारा है, क्योंकि मारने के काबिल था। अन्याय किसे अच्छा लगता है? मैं कायर नहीं। यहाँ पर अन्याय के विरुद्ध किसानों के विद्रोह का प्रदर्षन उन्हीं की बोली–भाषा में होता है।''[88]

लेखिका ने 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में चित्रित किया है कि अभावग्रस्त जीवन जीते कबूतरा जाति के लोग जातिगत विद्वेष रूपी दंश को झेलते हुए अमानवीय जीवन जीने को बाध्य हैं–''हम तो मरा मूसा भी खा लेते हैं। खाने और हगने की चिंता के सिवा और जिंदगी है क्या?''[89] मैत्रेयी किस प्रकार मानवीय

---

86 रामदास मिश्र, 'साहित्य संदर्भ और मूल्य', ज्ञानपूर्णा प्रकाशन, जयपुर, 1960, पृष्ठ– 95
87 धीरेन्द्र वर्मा, 'आधुनिक हिन्दी शब्द कोश', ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, 1917, पृष्ठ– 289
88 'अगनपाखी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001 पृष्ठ– 81
89 अल्मा कबूतरी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000 पृष्ठ– 92

संवेदना की गहराई पर बैठकर अपराधी कही जाने वाली कबूतरा जाति की पीड़ा एवं विवषता को सभ्य समाज के सामने लाती हैं। यह उनका लेखकीय साहस व ऋषि दृष्टि है।

ग्राम्य जीवन की विविध परम्पराओं, रूढियों, रीति–रिवाजों को समस्यात्मक रूप में 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में चित्रित किया गया है। बाल–विवाह के सम्बन्ध में दृष्टव्य है–''बैरागी का ब्याह बचपन में ही हो गया था। बुन्देलखण्ड की परम्परा के अनुसार माता–पिता द्वारा लिए गये निर्णय को तोड़ने का साहस कर पाना असंभव था, फिर भय भी तो रहता है कि यदि लड़के–लड़की ने किशोरावस्था पार कर ली तो कुँवारे ही रह जायेंगे। कहाँ मिलेगा बड़ी उमर का वर और कहाँ बैठी होगी इतनी उमर की कन्या। यादवों, लोधियों, कुर्मियों में यही धारणा शत–प्रतिशत अपना प्रभाव जमाए हुए है।''[90]

'कही ईसुरी फाग' उपन्यास में बुन्देलखण्ड के ग्रामीण जीवन एवं समाज के दोहरेपन, संकीर्ण मानसिकता तथा स्त्री के प्रति दुर्भावना व दुर्व्यवहार, स्वार्थपरता, परम्पराओं के प्रति मोह, रूढिग्रस्तता तथा असहिष्णुता आदि का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण है 'सत्रह गाँवों की खाक छानकर आयी मैं ऋतु। जहाँ रजऊ की खोज में जाती वहाँ ईसुरी के निशान तो मिलते, प्रेमिका का पता कोई नहीं देता था, जैसे उसके बारे में बताना किसी वेश्या का पता देना है। ईसुरी के साथ जोड़कर लोग उसके नाम पर मजा लेते, मगर उसको अपने आस–पास की स्त्री मानने से मुकर जाते।' प्रारम्भ से ही बुन्देलखण्ड अंचल की सबसे बड़ी व चिंतनीय समस्या दस्युओं की रही है। जो मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में उभरकर सामने आता है– ''डाकू और डकैती पहजू और चम्बल के भरकों में कोई नई बात नहीं। औरतों के गहने–गुरिया जान की फजीहत बने हुए थे।''[91]

इतना ही नहीं बुन्देलखण्ड के ग्रामीण विकास हेतु चलाई जा रही विविध योजनाओं का भी मानो लेखिका लेखा–जोखा प्रस्तुत करती हैं। सरकारी, गैर सरकारी शिक्षण संस्थानों, सरकारी योजनाओं तथा सर्व–शिक्षा अभियान का प्रयास बुन्देलखण्ड के ग्रामीण स्त्री शिक्षा एवं गरीब परिवार के बच्चों की शिक्षा के स्तर में

---

90 मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा बहती रही, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ– 45
91 मैत्रेयी पुष्पा, कही ईसुरी फाग', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृष्ठ– 301

कोई खास परिवर्तन नहीं ला पाये हैं। बालिका शिक्षा आज भी ग्रामीण क्षेत्रों के लिए समस्या बनी हुई है। 'इदन्नमम' उपन्यास की नायिका मन्दा चाहते हुए भी पढ़ने की इच्छा पूरी नहीं कर पाती है—''बऊ हम पढ़ने जाया करेंगे, उसने उत्साह में कह डाला। 'पढ़वै'?, 'हाँ बऊ, यहीं के स्कूल में छः में दाखिल हो जायेंगे।' बऊ दो क्षण मौन हो देखती रही। 'कल से ही जायेंगे बऊ। मकरन्द किताबें ला देंगे मोंठ से पइसा दे देना।' 'बेटा न, ना मन्दा।' ''ना क्यों बऊ'? ''बिटिया और बालकों की होड़, जिद न करो तुम्हारा बाहर पढ़ना ही मुसीबत हो पड़ेगा। मन्दा फिर क्या मालूम कि हम कितेक दिना तक रह पाते हैं जम के, कब उखड़ना पड़े यहाँ से।' शिक्षा एक बुनियादी आवश्यकता एवं अधिकार है किन्तु मंदा जैसी न जाने कितनी बालिकाएँ व स्त्रियाँ शिक्षा से वंचित रह जाती हैं। स्त्री शिक्षा जैसी सार्वभौमिक समस्या को लेखिका ने अपने शिल्प कौशल से आँचलिकता का रंग दिया है जो कथावस्तु को प्रमाणिक बना रहा है।[92]

अंधविश्वास, धार्मिक रीति—रिवाजों, पूजा—पाठ और कर्मकाण्डों के चलते स्त्रियों का दैहिक तथा मानसिक शोषण 'झूलानट' में समस्या के रूप में चित्रित हुआ है— 'इसके बाद व्रत—उपवासों का सिलसिला सोलह सोमवार, संतोषी माता के शुक्रवार, केला पूजन के बृहस्पतिवार, शनिग्रह शांति के शनिवार। भाभी सूख—सूख कर कांटा होती चली जा रही हैं। उनका रंग बेरौनक हो गया। चेहरा लंबोतरा, सुन्दर दाँत बाहर निकल आये, बाल किशन डर गया, उसने मंगलवार का व्रत अपने जिम्मे ले लिया।'[93]

धर्म के नाम पर ग्रामीण समाज की मनःस्थिति, अंधविश्वासों के प्रति समर्पण, साधु—संन्यासियों की ढपोलशंख बातें तथा तंत्र—मंत्र के बहाने कुण्ठित अवसरवादियों की सच्चाई को 'अगनपाखी' उपन्यास उजागर करता है। ''जोगिया धोती पहने भुवन बड़े—बड़े मनकों की कंठी दिखाने लगी—देखो नीम का तेल, कपूर का धुआँ और कबूतर की देह जलाकर जोत जगाई थी। भभूत बनाकर तैयार की और बताया कि रोगी के माथे, कान और भुजाओं पर भभूत लगाओ, मंत्र पढ़ो और मालेफुरो, दिनभर उपासे रहो, रात को दो केलों से व्रत तोड़ो, चटपटा, चिकनाई और खट्टा मत खाओ,

---

92 निर्मल वर्मा, 'महादेवी एक मूल्यांकन', लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 1969, पृष्ठ— 208
93 मैत्रेयी पुष्पा, ''झूलानट', राजकमल प्रकाशन, 1999 ई0 नयी दिल्ली पृ0 45

खटिया पर सोना नहीं, कहीं आना–जाना नहीं, कंठी का परहेज है, माला गंगाजल के पानी से फूंकी थी, वही पानी हमारे ऊपर छिड़का, हम बेहोश हो गये। स्वामी के चरणों पर गिरे सो चोट नहीं आई।''[94]

'चाक' उपन्यास के विश्लेषण पर यह तथ्य सामने आता है कि वंश परम्परा के आधार पर रोजगार करने तथा सरकारी योजनाओं के प्रति ग्रामीण समाज की मानसिकता रूग्ण है। प्रतिभाशाली युवक रंजीत सरकारी योजना के अन्तर्गत गाँव में ही व्यापार करने की योजना को बनाता है किन्तु इसकी इस भावना को जानकर गाँव वाले उसे लगातार उपेक्षित और लांक्षित करते हैं–''मैंने कितने विश्वास और भरोसे से कहा था कि गाँव की पोखर में मैं मछलियां पालूँगा। तो लोग ऐसे देखने लगे जैसे मैं कसाईखाना खोलने जा रहा हूं। एक राय होकर कहा गया रंजीत, जिस गाँव में सक्का तक अण्डा, प्याज छिपाकर खाते हैं तू वहाँ मच्छी–गोस्त के ढेर लगाएगा। भइया शिवजी की मढिया सौ कदम के फासले पर है यह अधरम, महापाप इस गाँव में तो मत करे।''[95]

इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों की कथा वस्तु को शहरी जीवन तथा शहरी सभ्यता से मुक्त कर उपेक्षित ग्रामीण जीवन में प्रतिष्ठित किया है। इनके कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन शहरी जीवन की चकाचौंध से दूर अपनी अलग पहचान व वैशिष्ट्य के साथ अभिव्यंजित है। बुन्देलखण्ड का पूरा का पूरा परिदृश्य गाँव की संस्कृति, ग्रामीण जीवन की समस्याओं, अन्धविश्वासों, रूढियों, अभावों, सामाजिक– आर्थिक परिवर्तनों आदि का नयी चेतना, नई दृष्टि एवं नयी भावभंगिमा के साथ चित्रित हुआ है।

2.3 **हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण चेतना**

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य जीवन को सर्जनात्मकता की दिशा की ओर ले जाता है। निःसन्देह साहित्यकार युग दृष्टा और युग सृष्टा होता है। वह जीवन के सभी पक्षों को स्वयं परखता है तथा भोगता है और उन्हें साहित्य मे स्थान भी देता है। साहित्य मानव चेतना का प्रतिफल है। साहित्य और लोक जीवन का घनिष्ठ संबंध है। भारत की पचहत्तर प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती है। इन्हीं

---

94 मैत्रेयी पुष्पा, ' अगनपाखी', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001 पृ0 66

95 मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004 पृ0 124

गाँवों में भारत की सभ्यता, संस्कृति व लोक जीवन की झलक मिलती है। महात्मा गाँधी के अनुसार, भारत वर्ष की आत्मा गाँवों में निवास करती है।

मैत्रेयी पुष्पा के अधिकांश उपन्यास ग्रामीण जीवन, ग्रामीण परिवेश तथा यहीं की मान्यताओं और मूल्यों के आधार पर लिखे गये हैं। ग्रामीण समाज में पुरुष के वर्चस्व और पितृसत्तात्मक मूल्यों के चलते नारी को सर्वाधिक संघर्ष करना पड़ा है। 'स्मृति–दंश' (अगनपाखी), 'बेतवा बहती रही' (त्रिया–हठ), 'इदन्नमम्', 'चाक', 'झूला– नट', 'अल्माकबूतरी', 'कही ईसुरी फाग' तथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' सरीखे उपन्यासों में मैत्रेयी पुष्पा की दृष्टि पूर्णतः पितृसत्ता प्रधान परम्परागत समाज से जूझती नारी जीवन के यथार्थ पर रही है।

मैत्रेयी के उपन्यासों में ग्रामीण समाज में आदिवासी और खानाबदोस की तरह जीवन बिता रहे सभी समाजों की स्त्री का चित्रण है। प्रायः अनपढ़ स्त्री, पितृसत्ता को नियति मानकर जी रही स्त्री, आर्थिक रूप से पिता, पति और परिवार के भरोसे जैसे–तैसे जीवन बिता रही स्त्री, ऐसी स्त्री जिसके लिए अकारण यातना सहजना और बलात्कार की शिकार होना सामान्य–सी बात हो, अन्याय के विरूद्ध जान की बाजी लगा देने की स्थिति तक संघर्ष करने को प्रस्तुत स्त्री; अन्याय तथा शोषण के विरूद्ध राह तैयार करने के लिए स्वयं को पुरुष की वासनाओं की पूर्ति के लिए समर्पित कर देने में हिचक न मानने वाली स्त्री; पुरुष की राजनीतिक चाह की पूर्ति के लिए साधन के रूप में काम में लायी जाने वाली स्त्री; अपना प्रेमी चुनने की इच्छा रखने वाली स्त्री जो अमानवीय बलात्कार की शिकार हो जाती है; जागरूक, चेतना सम्पन्न, शिक्षित और सेवाकार्य करने वाली स्त्री; काव्य–शास्त्र और साहित्य से प्रेम करने वाली और उसी के रंग में रंगने वाली स्त्री आदि स्त्री संघर्ष के असंख्य चित्र प्रस्तुत किए हैं। इनमें से बहुत से नारी चरित्र विशेष रूप से सफल नारी चरित्र भी हैं जो अपने संघर्ष और विवेक बुद्धि के कारण शोषक समाज पर उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर सकी हैं। 'अल्मा कबूतरी' की अल्मा तथा 'इदन्नमम्' की मन्दाकिनी इसी कोटि की नारी चरित्र हैं।

मैत्रेयी पुष्पा का व्यक्तित्व क्रियाशील एवं संघर्षशील रचनाकार का व्यक्तित्व है। उनके व्यक्तित्व में पारिवारिक जीवन की हलचल, चिन्तन, नारी जीवन का संघर्ष, आन्तरिक व बाह्य संघर्ष आदि को देखा जा सकता है। मैत्रेयी पुष्पा एक

ऐसी संघर्षशील लेखिका हैं, जिन्होंने सामाजिक चेतना पर विशेष रूप से बल दिया है। इनका व्यक्तित्व सामान्य जन–जीवन से अधिक प्रभावित है। इनके व्यक्तित्व में नारी के प्रति दयनीय भाव, शोषक वर्ग के प्रति करुणा, जनजातीय वर्ग के प्रति दया भाव व भ्रष्ट प्रशासन के प्रति विद्रोह भाव परिलक्षित होता है। इन्होंने नारी जीवन की समस्याओं व भावनाओं को अपने कथा–साहित्य में स्थान दिया है। इनका साहित्य शहरी जीवन शैली की अपेक्षा ग्रामीण जीवन शैली से अधिक प्रभावित है। इनके साहित्य में किसी प्रकार का बनावटीपन नहीं है, जो कि इनके सीधे–साधे व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करता है। मैत्रेयी ने अपने बाह्य व्यक्तित्व के बारे में अपने आत्मकथात्मक उपन्यास ''कस्तूरी कुण्डल बसै'' में कहा है, ''पतली दुबली लहराती देह, अच्छी आँखें, गोरा रंग, लम्बा सा कद, जो देखेगा मोहित हो जाएगा।''[96] स्पष्ट होता है कि मैत्रेयी पुष्पा आकर्षक व्यक्तित्व की स्वामिनी हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के शब्दों में, ''मन में गाँव घूमता हैं। इदन्नमम लिखा अब फिर गाँव।''[97]

समूचा लोक जीवन मानवीय क्रिया–कलापों के सूत्र को लेकर चलता हैं। ''लोक जीवन अंचल विशेष के समग्र व समेकित संश्लिष्ट जीवन को रूपायित करता हैं। आंचलिकता व लोकतत्व का घनिष्ट संबंध हैं।''[98]

डॉ. सरोजनी रोहतगी के अनुसार, ''लोक संस्कृति किसी देश या जाति की आत्मा हैं। इसके द्वारा समाज के विचार, विश्वास, मान्यताएँ, रूढ़ियाँ, उत्सव, त्योहार, पर्व, वेशभूषा, अलंकार और जीवन के अनेक आदर्श माने जाते है।''[99]

बीसवीं सदीं के उत्तरार्द्ध की सशक्त महिला कथाकार मैत्रेयी पुष्पा एक क्रान्तिकारी लेखिका है। उनके सम्पूर्ण कथा साहित्य में स्त्री विमर्श तथा ग्रामीण अंचल की आंचलिकता तथा लोक जीवन है। उनके उपन्यास फणीश्वरनाथ 'रेणु' के

---

96 मैत्रेयी पुष्पा, ''कस्तूरी कुण्डल बसै'', पृ0 125

97 मैत्रेयी पुष्पा, ''इदन्नम'', राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 1994 पृ0 32

98 डॉ. आनन्द मोहन उपाध्याय : फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों का लोकतात्विक अध्ययन, पृ. सं. 60।

99 डॉ. सरोजनी रोहतगी : अवधी का लोक साहित्य, नेशनल पब्लिसिंग हाउस नई दिल्ली, पृ. सं. 276।

मैला आँचल व प्रेमचन्द के 'गोदान' के इर्द गिर्द घूमते हैं। जैसे उनके पूरे उपन्यासों में लोक जीवन व आँचलिकता का पुट है।

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य के केन्द्र में नारी है वह भी ठेठ ग्रामीण नारी हैं जो अशिक्षित, रूढ़िग्रस्त और स्वचेतना से कोसो दूर है। शोषित है, पीड़ित है और संघर्षरत है। अपनी पीड़ा को मिटाने के लिए साथ ही पूरे स्थानीय रंग में रंगी हुई हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में लोक जीवन के विविध आयाम, लोक जीवन का यथार्थ तथा लोक चेतना भरी हैं। आपका समस्त साहित्य सृजन का ताना बाना ग्राम्य जीवन से प्रेरित एवं प्रभावित रहा है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में समूचा उत्तर भारत का ग्रामीण अंचल साकार हो उठा है। ग्रामीण लोक जीवन, लोक विश्वास, लोक मान्यताएँ, लोक परम्परायें, लोक आचार, व्रत, त्योहार, मेले, उत्सव, जातियता की रंगत, स्थानीय रंग की राजनीति, अन्धविश्वास, लोक कलाएँ, खेल तमाशे, अशिक्षा, ग्रामीण आर्थिक संरचना, भाषा में आंचलिक मिठास व अनूठी नव्यता, सांस्कृतिक व सामाजिक सरोकार साकार हो उठे है। निःसन्देह फणीश्वरनाथ रेणु की आंचलिक परम्परा को आगे बढ़ाने का श्रेय मैत्रेयी पुष्पा को जाता है।

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में लोक जीवन की तीखी गंध है। उनकी कहानियों में ग्रामीण अंचल साकार हो उठा है।

'चाक' उपन्यास मैत्रेयी पुष्पा का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है जिसमें लोक जीवन की भीनी–भीनी खुशबू है। सारंग नायिका है जो नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती है। जो स्वतन्त्र जीवन जीना पसंद करती है। चन्दन की विदाई के समय शकुन अपशकुन का यह उदाहरण लोक जीवन की मान्यताओं और लोक विश्वास को बताता है। ''अपनी मुट्ठी में दबाकर राई, नौन, लाल मिर्च ले आई, चलती बेला, लपेटकर बेटे की बराबरी में पहुंची, सात बार उतारा और पिछवाडे की मुट्ठी उछाल दी।''[100] 'चाक' उपन्यास में अन्धविश्वास का उदाहरण दृष्टव्य है।

---

100 चाक : मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 63।

''लो यह, मंगो दादी ने सलामती का ताबीज दिया था। .... इसके गले में बांध आना। भूलना नहीं। यही ढाल है यही तलवार है।''[101]

'चाक' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने लोक जीवन में लोक लज्जा का चित्रण भी किया है, ''घूँघट पर्दा में ढकी हुई हूँ मैं। नहीं तो .... आँखों पर लोभ की पट्टी न बाँधना।''[102]

मैत्रेयी पुष्पा का पहला लगभग क्लासिक उपन्यास 'इदन्नमम' दसवें दशक की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। 'इदन्नमम' के आँचल में छिपा है विंध्य का अंचल। विंध्य की पहाड़ियों से घिरे वर्णित गाँव श्यामली और सोनपुरा के लोक जीवन की जीवंत धड़कनों को यह उपन्यास साँस दर साँस कहता है। इन गाँवों में लोक जीवन, लोक पर्व, लोक गीत, लोक आहें कराहें है नदी है, धूप है, अंचल में धूल है और सत असत है और हे रूढ़ियों और परम्पराओं की भूरी–पूरी दूनिया। 'इदन्नमम' उपन्यास में तीन नायिकाओं की बऊ (दादी), प्रेम (माँ) और मंदा (उपन्यास की नायिका) की बेहद सहज व संवेदनशील कहानी। 'इदन्नमम' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने मंदा (मंदाकिनी) के माध्यम से ग्रामीण अंचल में किसानों के अधिकारों के लिए संघर्ष का चित्रण किया है, ''राजा साहब जी, बड़ी परेशानी। क्रेशरों के कारण गाँवों में धूल छाया रहती हैं। पहले के मुकाबले दमा, साँस, कई गुना अधिक फैल गये हैं। मजदूरों के ही नहीं, किसानों के शरीर भी हो गये है इन बिमारियों के घर।''[103]

'इदन्नमम' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने लोक जीवन, लोक कला का जीता जागता चित्रण किया है। ''किसी ने गोबर से तो किसी ने पोतनी मिट्टी से। किसी ने सफेद में नीला थोथा मिलाकर पोती है बखरी। .... चित्रकारी तो एक जैसी है सब भीतों पर।''[104]

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने बून्देलखण्ड के आस पास के क्षैत्र में विलुप्त होती जनजाति का चित्रण किया है। अल्मा कबूतरी में लोक जीवन, लोक

---

101 चाक : मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 63।

102 चाक : मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 57।

103 इदन्नमम : मैत्रेयी पुष्पा, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 307।

104 इदन्नमम : मैत्रेयी पुष्पा, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 310।

परम्परा, लोक चेतना, लोक मूल्य, आँचलिकता की प्रस्तुति गीतों के माध्यम से प्रस्तुत की है।

''मोरी चन्दा–चकोर, काजर लगा के आ गई भोर ही भोर मोरी चन्दा चकोर छतिया पै तोता करीहा पै भोर .... चोली में निबुआ घाघरा घुमेर।''[105]

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में आँचलिकता, लोक जीवन का पुट, कबूतरा जाति का दामपत्य जीवन, अशिक्षा, विवाह, संस्कार, रहन सहन, धार्मिक विश्वास, लोक गीत की झलक यत्र तत्र सर्वत्र मिलती है।

'बेतवा बहती रही' उपन्यास लोक जीवन का एक सुन्दर दस्तावेज है। बेतवा नदी के किनारे रहने वाले आदिवासी, भाग्यवादी दीन हीन कृषकों के साथ होने वाले शोषण, उनका लोक जीवन, परम्परायें, रूढ़ियाँ, अशिक्षा, यौन विकृतियों, स्त्री अन्याय, स्त्री की त्रासदी की गाथा है। लोक जीवन के मध्य बेतवा नदी का प्राकृतिक सौन्दर्य हृदयस्पर्शी है, ''हहराती लहरों के संग तेजी से बहती निगाह– कोई टिकाव नहीं, ठहराव नहीं। तेज प्रवाह अतीत की स्मृतियों का उमड़ता तूफान।''[106] भाषा में आँचलिक मिठास व लोक जीवन की अनूठी नव्यता, लोक गीत की गूंज 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में हैं –

''कैसे कै दरसन पाऊँ री माई तेरी सँकरी दुअरिया माई के दुआरें एक कन्या पुकारै दैदेउ सजन वर जाऊँ री माई तेरी।''[107]

यह लोक गीत लोक जीवन का प्राण तत्व है। यह गीत तो हमारे गाँवों में आज भी गाये जाते है।

'झूलानट' उपन्यास में बुन्देलखण्ड धरोहर, वैभव संस्कृति, परम्पराएँ जनजातीय ग्रामीण विवश महिला की मनोदशा व वस्तु स्थिति की पुनरावृति वाला उपन्यास है। इस उपन्यास में लोक जीवन, आँचलिकता का पुट यत्र तत्र स्पष्ट परिलक्षित है। इस सन्दर्भ में राजेन्द्र यादव ने कहा है, ''झूलानट की शीलों हिन्दी उपन्यास के कुछ न भूले जाने वाले चरित्रों में से एक है।''[108]

---

105 अल्मा कबूतरी : मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 42।

106 बेतवा बहती रही : मैत्रेयी पुष्पा, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 09।

107 वहीं, पृ0 67

108 झूलानट : मैत्रेयी पुष्पा, (भूमिका में राजेन्द्र यादवप का वक्तव्य)।

'कस्तूरी कुण्डल बसै', 'गुड़िया भीतर गुड़िया' मैत्रेयी पुष्पा के आत्मकथात्मक शैली में लिखित उपन्यास है। जिसमें लेखिका के जीवन संघर्ष की कहानी है। वह स्वयं कहती है, ''यही है हमारी कहानी। मेरी और मेरी माँ की कहानी।''[109]

'गुड़िया भीतर गुड़िया' में मैत्रेयी पुष्पा की ईमानदार, आत्म स्वीकृतियाँ है। जिसमें मैत्रेयी पुष्पा ने बुन्देलखण्ड के आस पास के क्षैत्र के लोक जीवन में व्रत, त्योहार, उत्सवों के महत्वों पर प्रकाश डाला है। वह लिखती है, ''चन्द्रमा व पवित्र जल के आपसी हेल मेल से बना यह करवा चौथ का त्योहार। स्त्रियां, जैसे सबकी दूल्हन। बड़ी बूढ़ी तक सिन्दूर, बिन्दी और मंगलसूत्र के साथ चूड़ियों से सुसज्जित।''[110]

'अगनपाखी' उपन्यास में लोक गीतों, लोक कथाओं, लोक विश्वासों, लोक रूढ़ियों व लोक रीति रिवाजों के माध्यम से अनूठा प्रयोग प्रस्तुत किया है। वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास 'विराटा की पद्‌मिनी' उपन्यास की तर्ज पर लिखा है अगनपाखी। ''विजयासिंह की औरत ने देवी का अवतार ले लिया है, कैसा पुनर्जन्म, चुड़ैल योनी में आ गई है। .... ''नानी ने हमें हरामी का मूत कहा था।''[111] अगनपाखी में लोक गीतों का सौन्दर्य दृष्टव्य है –

''उठो उठो सूरजमल भइया, भोर भए उठो उठो चन्दनमल भइया, भोर भए ना रे सुआटा, मालिनी खड़ी तेरे द्वार इन्दरगढ़ की मालिनी ना रे सुआटा, हाट ई हाट बिकाय।''[112]

'त्रिया हठ' उपन्यास में लेखिका ने युवा पीढ़ी की मानसिकता का विश्लेषण किया है जिसमें नई विचारधाराओं का पोषण किया है। 'त्रिया हठ' उपन्यास में ग्रामीण परिवेश, लोक जीवन की छटा यत्र तत्र है। उर्वशी केन्द्रीय पात्र है। मीरा की दादी उर्वशी को लोक भाषा में गाली देती है, ''खसम खा लिया, इसका पूत मर जाए। .... तो अब हमारा ही घर मिला इस डायन को ....।''[113]

---

109 कस्तूरी कुण्डल बसै : मैत्रेयी पुष्पा, भूमिका से।

110 गुड़िया भीतर गुड़िया : मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 245।

111 अगनपाखी : मैत्रेयी पुष्पा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 21।

112 अगनपाखी : मैत्रेयी पुष्पा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 24।

113 त्रिया हठ : मैत्रेयी पुष्पा, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 117।

'स्मृति दंश' (अगनपाखी) की भुवन परम्परागत परिवार में जन्मी कन्या है जो सौभाग्य से अच्छा घर पा जाती है लेकिन उसे शीघ्र ही पता चलता है कि उसका पति सामान्य पुरुष न होकर मानसिक रूप से बीमार है। क्या करूँ, क्या न करूँ की स्थिति से एकदम उबरकर भुवन पति की सेवा का संकल्प लेती है, लेकिन उसकी समझ में शीघ्र ही यह बात आ जाती है कि उसका जेठ भाई का इलाज सच्चे मन से करना नहीं चाहता है क्योंकि भाई की मृत्यु पर उसे मिलने वाला भाई का हिस्सा महत्त्वपूर्ण है। भुवन संघर्षशील तो है ही जानकार भी है कि पति की मृत्यु होने पर उसके हिस्से की सम्पत्ति का अधिकार पत्नी को है और वह कोर्ट में उज्रदारी पेश कर पति के बड़े भाई अजय सिंह के दिमाग ठिकाने लगा देती है। 'बेतवा बहती रही' (त्रिया हठ) की उर्वशी भी भुवन की तरह की युवती है जो मनोनुकूल विवाह नहीं कर पाती। अच्छे घर में ब्याही जाकर एक बेटे की माँ बन जाती है। एक दुर्घटना में पति की मृत्यु हो जाने के उपरान्त उसके भाई अजित के द्वारा उसके दुखद जीवन का प्रारम्भ एक ऐसी स्त्री के रूप में होता है जहाँ भाई उसे अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उर्वशी की बालसखी मीरा के वृद्ध पिता बरजोर सिंह को सौंप देता है। यहाँ तक उर्वशी दुर्बल लगती है, लेकिन अब वह जाग उठती है और प्रत्येक विधवा अथवा बाल विधवा के कल्याण के लिए संघर्ष करने का श्रीगणेश बरजोर सिंह के छोटे बेटे उदय का हाथ उन्हीं के बड़े बेटे विजय की विधवा को देकर करती है। बरजोर सिंह कुटिल व्यक्ति थे, अय्याश थे जो उर्वशी के दुस्साहस का दण्ड उसे धीमा जहर देकर देते हैं और उर्वशी की मृत्यु हो जाती है। उर्वशी का बेटा देवेश अपनी माँ की मृत्यु के कारण की तह तक जाने का प्रयास 'त्रिया हठ' के अन्तर्गत करता है।

'इदन्नमम्' की मन्दाकिनी शोषित–पीड़ित नारी समाज को न्याय दिलाने के संघर्ष में कूदने वाली विलक्षण नारी है, जो शिक्षित, साहसी और दूरदृष्टा है। समाज के सभी वर्गों की नारी के शोषण के विरूद्ध लड़ने वाली मन्दाकिनी, राजनीति को सभी प्रकार की बुराइयों का मूल मानकर समाज में राजनीतिक चेतना जगाती है। 'चाक' उपन्यास की सारंग, स्त्री शोषण के विरूद्ध साहस के साथ संघर्ष करने वाला नारी चरित्र है, जो पति रंजीत के पुरुष वर्ग से सम्बन्धित संकीर्ण दृष्टि के चलते,

उसे ठुकराकर मास्टर श्रीधर को अपना गुरु मान लेती है और उन्हें सर्वस्व देकर शोषित और पीड़ित समाज के लिए संघर्ष करती है।

'झूला नट' की सरसुती अनुभवी, उदार हृदय और दूरदृष्टा नारी है, जो अपने छोटे बेटे बालकिशन का हाथ, बडे बेटे सुमेर की दूसरी पत्नी शीलो के हाथ में देकर एक तीर से दो निशाने साधती है। यहाँ शीलो संघर्षशील और चतुर स्त्री है जो परिस्थितियों को नियंत्रण में लेने की क्षमता से युक्त है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास खानाबदोश किस्म की जनजातियों कबूतरा समाज और कज्जा समाज के संघर्ष से सम्बन्धित है। कबूतरा समाज की–भूरी, कदमबाई और अल्मा कबूतरी तीन ऐसे संघर्षशील स्त्री चरित्र हैं जो स्वयं को राणा प्रताप के वंशज मानकर कज्जा समाज के अत्याचारों के विरूद्ध निर्णायक संघर्ष करते हैं। इनके पति और प्रियजन मारे जाते हैं, इनका स्वयं का तथा बेटियों का बलात्कार होता है; पुरुष के वर्चस्व में पिसती हैं, लेकिन शिक्षा और राजनीति को अपने कल्याण का मार्ग मानकर इन्हें अपने संघर्ष में सफलता मिलती है। सफलता का श्रेय जाता है–अल्मा कबूतरी को। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' की कस्तूरी (माँ) और मैत्रेयी (बेटी) दोनों ने ही पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष वर्चस्व के घिनौने और मर्मस्पर्शी कृत्य देखे और भोगे हैं। उक्त सत्ता के विरूद्ध संघर्ष में कस्तूरी का शिक्षित होना तथा आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ा होना ही सहायक रहा है। बेटी मैत्रेयी के लिए माँ कस्तूरी शिक्षक और प्रेरक रही है।

'कही ईसुरी फाग' की रजऊ तथा 'फरिश्ते निकले' उपन्यास की बेला बहू तथा उजाला आदि नारी चरित्र उल्लेखनीय हैं। रजऊ का संघर्ष घर परिवार की समस्यओं से कम फाग गायक ईसुरी के फागों के मोह के कारण अधिक रहा है। 'गुनाह–बेगुनाह' उपन्यास में विभिन्न आरोपों और समस्याओं के चलते सर्वथा बेगुनाह होते हुए भी जिन स्त्रियों को पुलिस के चंगुल में फँसना पड़ा है, अन्तःसंघर्ष से ग्रस्त हैं। इस कोटि में–रेशमी, शारदा, सुनीता, ममता, मनोरमा, शान्ता तथा अर्चना प्रमुख स्त्री चरित्र हैं, इनका अन्तःसंघर्ष बेगुनाही के उपरान्त पुलिस के द्वारा दी जाने वाली अमानवीय यातनाओं से सम्बन्धित है।

यद्यपि 'गुनाह–बेगुनाह' उपन्यास शहरी जीवन से सम्बन्धित है, लेकिन इस उपन्यास की ग्रामीण युवतियाँ जो अपना जीवन साथी चुनने के लिए किसी युवक से

प्रेम करती हैं, उनमें अन्तःसंघर्ष माता–पिता, भाई अथवा खाप पंचायतों के निर्णयों के कारण उत्पन्न होता है। शुभ्रा, ललिता, सविता, कम्मो आदि ऐसी युवतियाँ हैं जो पढ़ी–लिखी हैं और आधुनिकता से प्रभावित भी हैं। इनको लगता है कि अपने भाग्य का निर्णय करने का अधिकार इनका ही है–पिता–माता, भाई, ताऊ या दादा का नहीं। सविता, अपनी शादी अपनी पसन्द से करना चाहती है–उसने अपनी माँ से साफ शब्दों में कहा–"अम्मा, तुमने जनम दिया है, पर हमें सास लेने या न लेने की हकदारी ताऊ और दादा के कहने से मिलती है। यह कैसी जिन्दगी है?"[114]

"अरे! बेटी की जात होकर बाप–दादाओं से सवाल करेगी तू? कहाँ रहेगी फिर? चुप होकर जीना है तो समझ कि जिन्दगी है।[115]"

मैत्रेयी के नवीनतम परन्तु ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित तमाम घटनाओं को मिलाकर लिखे गए 'फरिश्ते निकले' उपन्यास में यद्यपि नारी के अन्तःसंघर्ष की दृष्टि से बहुत–सी स्त्रियाँ आयी हैं, लेकिन बेला बहू और उजाला इनमें प्रमुख हैं। इन दो नारी चरित्रों के अन्तःसंघर्ष का मुख्य कारण पितृसत्तात्मक परम्पराएँ हैं, जिनके अनुसार पुरुष नारी को भोग्या से बढ़कर कुछ नहीं समझता, पुरुष जब चाहे किसी स्त्री को अपनी हवस का शिकार बना ले, बेच दे अथवा घर से निकाल दे। बेला की माँ, शुगर सिंह को अपने पास रखकर स्वयं को सुरक्षित मानती है और उसे खुश करने में भी लगी है, लेकिन कभी–कभी उसे बेला और बूढ़े शुगर सिंह के ब्याह की बात को लेकर बेला की बातें उचित लगती हैं। पिरौना बाई बेला के दुःख को समझती है और स्वयं भी दुखी हो जाती है।

पुरुष सत्ता प्रधान समाज में स्त्री को डरा–धमका कर काम निकालने की कला में महारत प्राप्त होता है, अतः गुप्त रूप से बेला और उसकी माँ को डराने के हथकंडे के रूप में रात को उन्हें पुरुष की चेतावनी भरी आवाज सुनाई जाती हैं कि **"सीधे–सीधे उस मौंड़ी को शुगर सिंह के हवाले कर दे। नहीं तो इस काम के लिए हमें तेरी जरूरत नहीं है। तेरी जैसी औरतें पचासियों देखी हैं राँड़–विधवा। उनके हश्र क्या होते हैं? न लड़की मिलेगी, न तें रहेगी। इस इलाके का चलन तें जानती**

---

114 गुनाह–बेगुनाह – मैत्रेयी पुष्पा राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012 – पृष्ठ 215
115 वहीं, पृष्ठ 136

नहीं क्या[116]?" जो भी हुआ बेला के जीवन की डोर शुगर सिंह से बंध गई और अब बेला का जीवन अन्तःसंघर्ष से भरता चला गया, बाँझ कहलाई और शुगर सिंह की बीमारी के बहाने भारत सिंह तक पहुँचायी गयी। शुगर सिंह की पत्नी के रूप में बेला कभी सन्तुष्ट न रही, परन्तु बूढ़े शुगर सिंह ने पुरुष होने के दंभ में उसका अमानवीय यौन शोषण अवश्य किया। समय बीतने के साथ–साथ बेला को भारत सिंह और उनके भाइयों ने अपनी हवस का शिकार बनाने के अतिरिक्त राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि के लिए भी उसका उपयोग किया। प्रताड़ित और अपमानित बेला प्रतिशोध की भावना से ग्रस्त होकर भारत सिंह और उनके भाइयों को मौत की नींद सुला देती है।

यह सहज ही समझा जा सकता है कि हत्या के आरोप में बेला को जेल तो जाना ही था, क्योंकि हत्यारे का सुराग लगाना कठिन न था। भारत सिंह तथा उनके भाइयों को जला डालने के उपरान्त की स्थिति में बेला के अन्तःसंघर्ष की कल्पना की जा सकती है। बाँझ कहे जाने की अपमाजनक बात, बेला के लिए अन्तःसंघर्ष की ही नहीं, नारी के अपमान की बात भी थी। जिससे मुक्त होने में वह सफल नहीं हो पाती। उजाला को अन्तःसंघर्ष अपने पिता की परिस्थितियों तथा वीर से अपने प्रेम को लेकर ही मुख्य रूप से रहता है। वीर सिंह का पिता कुछ अपराधियों को उजाला का अमानवीय ढंग से बलात्कार करने तथा उसे मारने के काम में लगा देता है। वीर सिंह के पिता द्वारा लगाये गए अपराधी निर्देशानुसार काम करते हैं और उजाला को मरी समझकर झाड़ियों में फेंक देते हैं। उजाला के प्राणों की रक्षा बेला ही करती है। इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा के ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित उपन्यासों के नारी पात्र सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप उत्पन्न अन्तःसंघर्ष से पीड़ित हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के औपन्यासिक यात्रा का एक जबरदस्त मोड है 'कही ईसुरी फाग'। नायक ईसुरी है मगर कहानी रजऊ की है। 'कही ईसुरी फाग' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने फागुन का उत्सव तथा अंचल में होने वाले लोक गीतों की धुन तथा

---

116 फरिश्ते निकले – मैत्रेयी पुष्पा राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014 – पृष्ठ 28

संस्कृति की रंग बिरंगी छटा के खिलते फूलों में रजऊ (रज्जो) को एक गुलाब की कली के रूप में प्रस्तुत किया है।

2.4 हिन्दी कहानियों में ग्रामीण चेतना

मैत्रेयी पुष्पा ने उपन्यास के साथ बेहतरीन कहानियाँ भी लिखी है उनके तीन कहानी संग्रह हैं – 1. चिन्हार 2. ललमनियां 3 गोमा हँसती है

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों का कलेवर और पात्र ग्रामीण अंचल से उठाये गये है। उनकी कहानियों के केन्द्र में नारी है जो किसी न किसी पीड़ा से पीड़ित है। नारी जो ग्रामीण अंचल से है उसका लोक विश्वास, लोक अविश्वास, लोक रीति रिवाज, अशिक्षा, प्रचलित मान्यताएँ, जातिगत भेदभाव को बखुबी उद्घाटित करती है। ''यातना–यंत्रणाओं का वही रूप मेरे विचार से क्या अंचल, क्या देश में, क्या संसार में, पीड़ा का एक स्वरूप होता है। दर्द की धार एक ही होती है सर्वत्र।''[117] 'चिन्हार', 'अपना–अपना आकाश', 'सफर के बीच', 'मन नाँही दस बीस', 'केतकी', जैसी कहानियां लोक जीवन का प्रतिनिधित्व करती है।

मैत्रेयी पुष्पा का एक महत्वपूर्ण कहानी संग्रह है ललमनियाँ। इसमें 10 कहानियां है।'फैसला' कहानी में ग्रामीण लोक अंचल में अशिक्षित महिलाओं की कथा व्यथा को प्रस्तुत किया है। 'फैसला' कहानी पर टेलीफिल्म पर बसुमती की चिट्ठी प्रसारित हुई है। 'सिस्टर', 'सेंध', 'अब फूल नहीं खिलते', 'रिजक', 'बोझ', 'तुम किसकी हो बिन्नी?' 'ललमनियां जैसी कहानियों में लोक जीवन की तीखी गंध है। ललमनियां कहानी में ललमनियां के सौन्दर्य का उद्घाटन है, ''अरे वो तो अपनी बिरज भूमि का नाच है। .... उसे तो अटूट पिरैम था इस नाच से।''[118]

'गोमा हँसती है' सिर्फ एक कहानी नहीं, हिन्दी कथा जगत की एक घटना भी है।''[119] मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहन और कथन में अलग नहीं है। भाषा और मुहावरों में भी 'मिट्टी की गंध' समेटे है। इसका उत्कृष्ट उदाहरण है 'गोमा हँसती है'। इसमें दस कहानियां है। 'गोमा हँसती है' कहानी में अंधविश्वास का यह उदाहरण लोक जीवन की गंध को लिये हुए है।

---

117 चिन्हार (मैं सोचती हूँ कि) : मैत्रेयी पुष्पा, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 143।
118 ललमनियाँ : मैत्रेयी पुष्पा, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 139।
119 गोमा हँसती है : मैत्रेयी पुष्पा, (राजेन्द्र यादव का वक्तव्य)।

''पाप संका ! नरक होगा। सियाराम भगत के पास बहुत दिनों से गया नहीं। भूल गया पाप–पुण्य।''[120]

''है रे भैंस का दाना?

घेर का गोबर कूड़ा? बरदौ का पानी पत्ता?

पढ़ैनी के कल्सा–कल्सिया?''[121]

इस कहानी में लोक जीवन की तीखी गंध है।

निष्कर्ष

मैत्रेयी पुष्पा को मात्र ग्रामीण जीवन की कथाकार नहीं कहा जा सकता। वह जागरूक साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने परिवेश और परिस्थितियों में आए परिवर्तन के फलस्वरूप शहरी नारी की समस्याओं का चित्रण भी किया है और वह भी यथार्थ की गहराई में उतर कर। आपके 'विजन' उपन्यास की अपेक्षा 'गुनाह–बेगुनाह' उपन्यास नया है, लेकिन इन दोनों उपन्यासों में प्रमुखता शहरी जीवन की है। शहरी जीवन और शिक्षित नारी पात्रों की समस्याओं तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था के पोषक पुरुषों द्वारा किए जाने वाले उनके शोषण पर दृष्टि रखते हुए भी मैत्रेयी पुष्पा ने उपन्यासों के कथ्य का सम्बन्ध कहीं न कहीं ग्रामीण परिवेश से भी जोड़े रखा है। आपकी शिक्षित तथा नौकरीपेशा आज की स्त्रियाँ जो संस्कारों के बोझ तले दबी हैं, वह भी पुरुष समाज के शोषण से मुक्ति का प्रयास तब तक पूरी सामर्थ्य से नहीं करती जब तक उन्हें झकझोर कर जगा न दिया जाय अथवा जब तक उनके साथ अन्याय की अति न हो जाय। आपके उपन्यासों के जागरूक, संघर्षशील तथा साहसी नारी चरित्रों के रूप में उर्वशी, मंदाकिनी, कस्तूरी, सारंग, शीलो, कदमबाई, अल्मा, भुवन मोहिनी, बेला बहू, उजाला, आभा, डॉ0 नेहा, रजऊ, इला चौधरी, समीना तथा सुरेन्दर कौर विशिष्ट चरित्र कहे जा सकते हैं।

निष्कर्षत अतः कहा जा सकता है कि प्रत्येक रचनाकार का व्यक्तित्व भिन्न होता है और इसी भिन्नता के अनुसार वह अपने साहित्य लेखन में विशिष्ट शैली माध्यम और उपकरणों का चुनाव करता है। मैत्रेयी पुष्पा सादे व्यक्तित्व की

---

120 गोमा हँसती है : मैत्रेयी पुष्पा, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 189।

121 गोमा हँसती है : मैत्रेयी पुष्पा, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 175।

स्वामिनी हैं। इनका सम्बन्ध ग्रामीण जीवन से रहा है, यही कारण है कि इन्होंने अपने कथा–साहित्य में ग्रामीण जीवन का अधिक चित्रण किया है। इन्होंने अपने साहित्य में परम्परागत जड़ समस्याओं को उजागर किया है। इनके साहित्य में इनके व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण ही इन्होंने अपने साहित्य व समाज में विशिष्ट पहचान बनाई हुई है।